ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-8 No. 3 August 2020

बिहार की लोकतांत्रिक राजनीति में महिलाएं : जेंडर जस्टिस पर प्रश्नचिह्न

डॉ० रूपम कुमारी, असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट टीचर), राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सार–संक्षेप :

भारत में, शिक्षा के क्षेत्र में गांधीवादी विचारधारा का स्थान नेहरूवादी विचारधारा ने ले लिया। जहां गांधी आधुनिकीकरण के प्रति अविश्वास से भरे थे; उसे परख कर ही अपनाने के पक्ष में थे और साथ ही एक बहुत ही बुनियादी स्तर की शिक्षा के पक्षधर थे जो कि देश की सांस्कृतिक जड़ों के करीब हो, कौशल प्रदान करे व संदर्भों के अनुरूप हो। वहीं नेहरू शिक्षा को विकास व आधुनिकीकरण के मार्ग को प्रशस्त करने वाली इकाई के रूप में देखते थे। शिक्षा के विस्तार को वह प्राथमिकता नहीं मिली जिसकी बात होती रही थी और सरकार के बहुत से प्रयास जो बाद में इस क्षेत्र में किए गए वे भी परिवर्तन लाने में कम और विभेद बढ़ाने में अधिक कारगर हुए बिहार के पंचायतों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण का एक सकारात्मक परिणाम यह रहा है कि इसका असर महिलाओं के *वोट टर्न आउट* में दिखाई पड़ा है। 2005 के फरवरी में 49.94 प्रतिशत पुरुषों ने वोट डाले थे, जबकि नवम्बर के चुनाव में यह घट कर 47.02 प्रतिशत हो गया। यानी दो प्रतिशत पुरुष वोट डालने पिछले चुनाव की तुलना में कम निकले। दूसरी ओर फरवरी के चुनाव में कुल 42.51 प्रतिशत महिलाओं ने वोट डाले, नवम्बर के चुनाव में यह बढ़ कर 44.62 प्रतिशत हो गया। अर्थात् लगभग दो प्रतिशत महिलाएं घर से वोट डालने ज्यादा निकलीं।

कुंजी : *शिक्षा, आधुनिकीकरण, महिला, आरक्षण, विचारधारा*

परिचय :

आजादी के बाद के भारत में, शिक्षा के क्षेत्र में गांधीवादी विचारधारा का स्थान नेहरूवादी विचारधारा ने ले लिया। जहां गांधी आधुनिकीकरण के प्रति अविश्वास से भरे थे; उसे परख कर ही अपनाने के पक्ष में थे और साथ ही एक बहुत ही बुनियादी स्तर की शिक्षा के पक्षधर थे जो कि देश की सांस्कृतिक जड़ों के करीब हो, कौशल प्रदान करे व संदर्भों के अनुरूप हो। वहीं नेहरू शिक्षा को विकास व आधुनिकीकरण के मार्ग को प्रशस्त करने वाली इकाई के रूप में देखते थे। वे उसके आधुनिक पाश्चात्य स्वरूप से काफी प्रभावित थे। किन्तु विडंबना यह हुई कि आजादी के तुंरत बाद के भारत के मुख्य लक्ष्य औद्योगिकरण एवं रक्षा योजनाएं हो गए। शिक्षा के विस्तार को वह प्राथमिकता नहीं मिली जिसकी बात होती रही थी और सरकार के बहुत से प्रयास जो बाद में इस क्षेत्र में किए गए वे भी परिवर्तन लाने में कम और विभेद बढ़ाने में अधिक कारगर हुए। ऐसा दूरदर्शिता व उत्साह की कमी के कारण हुआ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-8 No. 3 August 2020

लोकतंत्र को मात्र बहुसंख्या के आधार पर सत्ता स्थापन की प्रक्रिया नहीं मान लेना चाहिए। लोकतंत्र की जटिल मांगे हैं जो केवल मुक्त व निष्पक्ष मतदान प्रक्रिया तक सीमित नहीं हैं बल्कि मानवाधिकारों और राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा; कानूनी अधिकारों के प्रति आदर, विमर्श व बंधनरहित खबरों के प्रचार की सुविधा एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण–जन सहभागिता, विशेष रूप से उत्पीड़ितों की सहभागिता को समाहित करती है। सहभागिता के संरचनात्मक प्रबंध भले ही मताधिकार के रूप में दृष्टिगोचर होते हों, किन्तु जहां तक गहन सहभागिता का प्रश्न है, बहुत कुछ कार्य होना बाकी है। असमानताएं, भाई–भतीजावाद, राजनीति का अपराधीकरण, लचर कानून व्यवस्था के होते हुए क्या सहभागिता को वास्तविक बनाया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन के विषय में होने वाला प्रत्येक चिंतन सहभागिता के तत्त्व की समीक्षा के बिना संभव नहीं है। सामाजिक परिवर्तन में सहभागिता का एक पक्ष यदि राजनीतिक है तो दूसरा सामाजिक, यदि मतदान प्रक्रिया को राजनीतिक पहल मानें तो सामाजिक स्तर पर उसका साथ देने के लिए जन संचार, साहित्य, जन वार्ता का होना बहुत आवश्यक है। सामाजिक स्तर पर नागरिकों के बीच परस्पर सहभागिता की भावना होना, विभिन्नता के प्रति सौम्य रहना, सचेत नागरिकों का समान होना सहभागिता व सामाजिक परिवर्तन को संभव बना सकते हैं।[1]

मताधिकार का स्वयं में सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक होना कुछ कठिन है। उसके पूर्ण रूप से फलीभूत होने के लिए सामाजिक अधिकारों का होना आवश्यक है। भारत में ऐसा संभव होने में, पुरातन व नवीन असमानताओं की प्रबलता, मताधिकार के राजनीतिक अधिकार को आच्छादित कर, बाधक सिद्ध होती है।

1990 के बाद से सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व का सवाल भारतीय राजनीति के केन्द्रीय सवाल के रूप में उभरा है। नई सामाजिक शक्तियों के उदय की प्रक्रिया तो काफी पहले शुरू हो गई थी लेकिन इस दौर में वे एक मजबूत हस्तक्षेपकारी ताकत के रूप में उभरीं। इस दौर में *पहचान* या *अस्मिता* आधारित राजनीति भारतीय राजनीति की एक प्रमुख प्रवृत्ति बनी। दलित, ओ.बी.सी., आदिवासी, महिला आदि अस्मिताओं के उभार ने भारतीय राजनीति और लोकतंत्र को पुनर्परिभाषित किया। समाजविज्ञानी योगेन्द्र यादव कहते हैं कि इस दौर की राजनीति में वयस्क मताधिकार की संपूर्ण संभावनाओं का इस्तेमाल होते हुए दिखता है। लोकतांत्रिकरण मुख्य तौर पर वोट की राजीतिक के जरिये होने लगा है। समाज के निचले तबके के लोगों का व्यापक राजनीतिकरण और हिस्सेदारी इस दौर की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

बिहार के पंचायतों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण का एक सकारात्मक परिणाम यह रहा है कि इसका असर महिलाओं के *वोट टर्न आउट* में दिखाई पड़ा है। 2005 के फरवरी में 49.94 प्रतिशत पुरुषों ने वोट डाले थे, जबकि नवम्बर के चुनाव में यह घट कर 47.02 प्रतिशत हो गया। यानी दो प्रतिशत पुरुष वोट डालने पिछले चुनाव की तुलना में कम निकले। दूसरी ओर फरवरी के चुनाव में कुल 42.51 प्रतिशत महिलाओं ने वोट डाले, नवम्बर के चुनाव में यह बढ़ कर 44.62 प्रतिशत हो गया। अर्थात् लगभग दो प्रतिशत महिलाएं घर से वोट डालने ज्यादा निकलीं। 2010 के चुनाव में यह प्रतिशत बढ़कर 54 प्रतिशत हो गया है। बिहार में महिलाओं को पिछड़ी श्रेणी में माना जाता है। पिछड़े हुए समुदाय में तो और भी पिछड़ा। डॉ. लोहिया के श्रेणीकरण में तो महिलाएं पिछड़ी समुदाय में हैं। वे दलित, अल्पसंख्यक, पिछड़ी और स्त्री जाति को पिछड़ी समुदाय में रखते थे। बिहार जैसे सामंती मानसिकता वाले राज्य में तो महिलाओं को फैसला लेने की आजादी भी नहीं रहती है। ऐसे बिहार में महिलाओं के वोट टर्न आउट का बढ़ जाना

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-8 No. 3 August 2020

बिहार की अनकही कहानी बयां करने के लिए काफी है। वोट का यह छलांग परंपरागत वर्जनाओं से मुक्ति की ओर छलांग की तरह है। श्रीकांत के अनुसार यह *सामाजिक सशक्तीकरण* की दिशा में बड़ा कदम है।

वोटर टर्न आउट बढ़ाने में बिहार में पंचायती निकायों में पचास प्रतिशत आरक्षण, लड़कियों को साइकिल और ग्रामीण क्षेत्रों में आंगनबाड़ी, सर्वशिक्षा अभियान और पढ़ाई की महत्वपूर्ण भूमिका रही। संभव है कि पिछड़े हुए समाज में जाति निरपेक्ष वोट डालने वाली महिलाओं की संख्या अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के साथ सशक्तीकरण की नई पहचान स्थापित कर दे। यह बिहार की परंपरागत छवि को नए सिरे से रचने और गढ़ने की ताकत रखता है।

बहरहाल अगर देश समावेशी लोकतंत्र को सही अर्थों में लागू करना आवश्यक है, तो समाज के विभिन्न तबकों की महिलाओं का सशक्तीकरण ही सही विकल्प है। हालांकि महिलाओं को पुरुषों की तरह वोट का अधिकार है और उन्हें गांवो से लेकर संसद तक चुनाव लड़ने के अधिकार भी हासिल है। बावजूद इसके उनका पूरी तरह *सशक्तीकरण* होना अभी बाकी है। इसके अलावा समावेशी लोकतंत्र में हमें उन *छद्म भागीदारियों* को भी हटाना होगा, जिसके तहत महिलाएं पुरुषों के एवज में रबर स्टांप की तरह काम करती है। यह समय की मांग है कि हम समावेशी लोकतंत्र के लिए पिछड़े समाज के लिए अवसर पैदा करने हेतु साथ आएं।

बिहार के अर्द्ध–सामंतवादी समाज में महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भूमिका निभाने का बहुत कम मौका मिला है। ऊँची जातियों और ऊँची पिछड़ी जातियों और मुस्लिमों में पितृसत्ता का प्रभाव बहुत अधिक हावी रहा। यहाँ महिलाओं की भूमिका घरेलू कामों तक सिमटी रही। निम्न पिछड़ी जातियों और दलित परिवारों में पितृसत्ता की जकड़न तुलनात्मक रूप से काफी ढीली रही। लेकिन ये समूह मुख्य रूप से आर्थिक बदहाली और जीविका की जरूरतों से जूझते समूह हैं। संसदीय राजनीति में इन समूहों को बहुत कम प्रतिनिधित्व मिला।[2]

राजनीतिक जागरूकता एवं प्रतिनिधित्व सशक्तीकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम है। लेकिन विडम्बना तो यह है कि बिहार विधानसभा में पहुँचने वाली महिला नेताओं की गणना उँगलियों पर की जा सकती है। आजादी के तुरंत बाद के दौर में, विशेष रूप से कांग्रेस पार्टी में महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के मामले में उत्साह था। उस दौर में, कांग्रेस के भीतर महिलाओं के अधिकार के लिए (आजादी से पूर्व) संघर्ष करने वाली महिला नेत्रियों (तथा पुरुषों) की अच्छी जमात थी। कांग्रेस पार्टी में यह परंपरा भी विकसित हुई। इसलिए, 1952 में 13 महिलाएं विधानसभा में पहुंची और यह उत्साह 1957 में 34 महिलाओं में तब्दील हुआ। 1962 में इस संख्या में गिरावट आई, किन्तु 25 महिलाएं फिर भी विधानसभा में पहुंची। 1967 में गैर–कांग्रेसी सरकार बनी और महिलाओं की संख्या घटकर 10 पर आ गई। 1969 में 4 के निम्नतम स्तर को छूकर 1972 में यह संख्या बढ़कर 13 हो गई।[3]

दिलचस्प है यह देखना कि 1967 से 1977 के दशक में अस्थिरता का शिकार रही कांग्रेसी तथा गैर–कांग्रेसी सरकारों के जमाने में महिला प्रतिनिधित्व की संख्या काफी घटी। लेकिन, उससे भी ज्यादा दिलचस्प है यह तथ्य कि दूसरी आजादी के पंख पर सवार 1977 में प्रचंड बहुमत वाली जनता पार्टी की सरकार में महिला विधायकों की संख्या मात्र 13 रही। यह कहना मुश्किल है कि इनमें से कितनी जनता पार्टी की थीं और कितनी कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों से। यह आंकड़ा फिलवक्त उपलब्ध नहीं है। 1980 में यह संख्या 13 रही जो 1985 में बढ़कर 15 हुई और 2000 तक बिहार में यह संख्या 12–15 के बीच

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-8 No. 3 August 2020

डोलती रही। 1962 के बाद अक्तूबर 2005 में हुए चुनावों में 43 साल बाद महिला विधायकों की संख्या 25 को स्पर्श कर सकी और 1957 के बाद 2010 में यानि 53 साल बाद यह संख्या 34 को छू सकी। 2015 के विधानसभा चुनाव में यह संख्या एक बार फिर घटकर 28 हो गई है।[4]

अनुसूचित जाति तथा जनजाति दोनों जमातों से यदि कांग्रेस के स्वर्णकाल यानि 1957 में क्रमशः 3 तथा 1 महिला विधायक थीं, तो यह संख्या 1962 में बढ़कर अनुसूचित जाति के लिए 5 हो गयी, जबकि जनजाति के लिए शून्य। मुस्लिम जमात से 1957 तथा 1962 में 1–1 महिला विधायक रहीं। लेकिन, 1967 की गैर–कांग्रेसी सरकार में मात्र 3 महिला विधायक अनु. जाति की जमात से चुनी गई और 1977 की क्रांतिकारी विधानसभा में तो यह संख्या घटकर 2 हो गई। हां जनजाति कोटे से 1 विधायक विधानसभा में पहुंची।

अब 1990 से बिहार में जारी 'सामाजिक न्याय' की ठेकेदारी करने वाली दलों की स्थिति देखें तो पाते हैं कि अनु. जाति तथा जनजाति की महिला विधायकों की संख्या 2 दूना 4 थी, जो 1995 में 3 दूना 6 हुई। 1995 में 6 की यह संख्या 58 वर्षों के (2010 तक) इतिहास में सर्वाधिक है। अनु. जाति जमात से 5 महिला विधायक 1962 के बाद पहली बार अक्तूबर 2005 में यानि 43 साल बाद विधानसभा में पहुंची और 2010 में यह संख्या 4 हो गई। दोनों ही चुनावों में अनु. जाति का प्रतिनिधित्व शून्य रहा।[5] 2015 के विधानसभा चुनाव में कुल 28 महिलाओं ने विधानसभा में अपनी भागीदारी दर्ज की, जिनमें से अनुसूचित जाति की भागीदारी महज 4 है और अनुसूचित जाति की 01।

मुसलमानों की बात करें तो 1957 तथा 1962 में 1–1, 1972 में 2, 1980 तथा 1985 में 1–1 महिला विधायक रहीं। गौर करें ये सारे चुनावी वर्ष कांग्रेस की सरकार के खाते में हैं। 1967, 1969, 1977 तथा 1990 से लेकर 2005 तक यानि गैर–कांग्रेसी सरकारों (कमोबेश समजावादी खेमे) से लेकर 'सामाजिक न्याय' की ठेकेदार सरकारों तक के 20 वर्ष के लंबे दौर के बाद 2010 में 2 मुस्लिम महिलाएं विधानसभा में पहुंची । यह 1972 के बाद यानि 38 सालों के बाद संभव हुआ। लेकिन एक बार फिर 2015 के विधानसभा चुनाव में मुस्लिम महिलाओं का प्रतिनिधित्व शुन्य है।[6] 'सामाजिक न्याय' की ठेकेदारी में संलिप्त दलों के लिए *'जेंडर जस्टिस'* का कितना महत्व है– यह स्पष्ट है।

बिहार की लोकतांत्रिक राजनीति में महिलाओं के सशक्तीकरण को हम उनके सामाजिक एवं वर्गीय संरचना के संदर्भ में अधिक स्पष्ट ढंग से समझ सकते हैं। दरअसल 1952 से 1962 तक जितनी महिलाएं बिहार विधानसभा में पहुंची, उनका कहीं न कहीं से आजादी की लड़ाई से सीधा या परिवार के जरिए रिश्ता रहा। बड़े राजनैतिक परिवारों से तब भी महिलाएं चुनाव लड़ती थी और आज भी यह सिलसिला जारी है। बहुमत वैसी महिलाओं का रहा जो समाज की अगड़ी तथा मध्यम जातियों से आती रहीं। 1952–62 के बीच अगड़ी जातियों से ही ज्यादातर महिलाओं की भागीदारी रही। 1967 से 1990 तक का दौर उथल–पुथल का रहा और महिलाओं की भागीदारी भी इससे प्रभावित हुई। राजनीतिक हिंसा से लेकर राजनीति के अपराधीकरण का दौर भी यही रहा, जो आगे चलकर 'अपराध के राजनीतिकरण' में तब्दील हो गया।[7] बिहार में हिंसा और अपराध का राजनीतिकरण एक बड़ा कारण रहा है जिसने महिलाओं को अपने बूते राजनीति में जगह बना पाने के मौके खत्म किए हैं।

राजनीति में वंशवाद और परिवारवाद महिलाओं के लिए सबसे बड़ा प्रोमोटर रहा है। बड़े कांग्रेसी नेताओं की पत्नियां, बेटियां, बहुएं पारिवारिक सत्ता के राजनीति में विस्तार के रूप में प्रोमोट की गई। इसी

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-8 No. 3 August 2020

परंपरा को बाद के दशकों में समाजवादी खेमे की पार्टियों के युवा नेताओं ने सीखा और अमल किया बावजूद इसके कि कांग्रेस के शीर्ष परिवार की वंशवाद चलाने के लिए भर्त्सना करते रहे। यही परंपरा राजनीति में मजबूती से पैठ चुके अपराधी तत्वों ने चलाई और खुद जेल जाने के बाद पत्नियों को अपनी जगह चुनाव लड़वाकर विधानसभा में अपने प्रतिनिधि के बतौर भेजा।[8] सामाजिक न्याय की ठेकेदार पार्टियों ने इस नई परंपरा को खूब पुष्पित–पल्लवित किया है। संसदीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी की प्रवृत्ति यह है कि अनुकंपा के आधार पर जैसे नौकरियों का प्रावधान है, वैसे ही संसदीय राजनीति में प्रवेश की भी व्यवस्था है। पति की हत्या हो जाने पर पत्नी को टिकट देकर विधानसभा (या लोकसभा) में भिजवा देने के उदाहरण भी कई हैं। 2015 के विधानसभा चुनाव में बाहुबली पतियों को पत्नियों की सीटें छीनते भी देखा गया, क्योंकि 'जीतना' और 'हर कीमत पर जीतना' अनिवार्य था। 'जीतने की अनिवार्यता' एक बड़ा कारण है – महिलाओं की उम्मीदवारी को घटाने का और इसे पार्टियां बड़े आराम से बतौर तर्क इस्तेमाल भी करती हैं। चुनाव अब जनप्रतिनिधित्व स्थापित करने के लिए नहीं होते, येन–केन प्रकारेण जीतने के लिए होते हैं।

पिछले दो चुनावों के दौरान महिलाओं की भागीदारी मतदाता के रूप में कई सक्रिय कारकों की वजह से काफी बढ़ी है। एक बड़ा कारक रहा है – पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 50 फीसदी *क्षैतिज आरक्षण* की व्यवस्था और दूसरा चुनावी हिंसा का खात्मा। 2010 के विधानसभा चुनावों में पहली बार 54.99 प्रतिशत महिला मतदताओं ने मतदान किया, जो पुरुषों के 51.12 प्रतिशत से 3.37 प्रतिशत अधिक था। 2015 के चुनावों में यह जेंडर–गैप महिलाओं के पक्ष में और अधिक बढ़ गया। इस बार 60.57 प्रतिशत महिलाओं ने मतदान किया, जबकि पुरुषों के लिए यह 53.41 प्रतिशत रहा यानि 7 प्रतिशत से अधिक का फासला।[9] बिहार में पुरुषों का व्यापक स्तर पर पलायन की पुरानी हो चुकी परिघटना भी इस *जेंडर–गैप* के लिए एक जिम्मेदार कारक है, किन्तु महिलाओं में ग्रास रूट्स पर आ रही चेतना तथा शांतिपूर्ण एवं सुरक्षित मतदान प्रक्रिया को सबसे महत्वपूर्ण कारकों के रूप में रेखांकित करना ही होगा। तीसरा कारण बढ़ती हुई साक्षरता भी है। 2011 की जनगणना रिपोर्ट के मुताबिक महिला साक्षरता दर में पिछले दशक के मुकाबले 20 प्रतिशत की बढ़त हुई है।[10]

2015 के विधानसभा चुनाव के वक्त बिहार में महिला मतदाताओं की संख्या 3.11 करोड़ रही, जबकि पुरुष की 3.56 करोड़। मतदाता के रूप में जेंडर गैप काफी रहा–1000 पुरुष मतदाताओं के मुकाबले 875 महिला मतदाता। यह जेंडर गैप 2010 के चुनावों के समय अधिक था और 2015 में 26 अंक से घटा है। इसका अर्थ यह है कि महिला मतदाताओं में मतदान के प्रति रूझान लगातार बढ़ रहा है। 16वीं विधानसभा के लिए हुए चुनावों में महिला मतदाताओं का प्रतिशत 46 था, जिसमें 60.57 प्रतिशत ने मतदान किया। नीतीश कुमार ने दस वर्षों में कई योजनाओं के जरिए महिला वोट बैंक को मजबूत किया है।

2015 की विधानसभा में लिंगानुपात 88:12 (215 : 28 = 243) है। यानि स्त्रियों की संख्या 12 फीसदी। 88 प्रतिशत पुरुषों का वर्चस्व सत्ता तथा विपक्ष को मिलाकर है। यह स्थिति लोकतंत्र का कितना गंभीर उपहास है, यह बताने की जरूरत नहीं है। फिलवक्त तो यही कहा जा सकता है कि विधानसभा में महिलाओं की भागीदारी महिला सशक्तीकरण का प्रमाण तो कतई नहीं है। यदि प्रमाण है तो *पितृसत्तात्मक परिवारवाद* का संसदीय राजनीति में विस्तार और इस विस्तार में भी मुख्य घटक के रूप में आपराधिक गठजोड़ का विशेष योगदान।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-8 No. 3 August 2020

निष्कर्ष :

बिहार में महिलाओं को पिछड़ी श्रेणी में माना जाता है। पिछड़े हुए समुदाय में तो और भी पिछड़ा। डॉ. लोहिया के श्रेणीकरण में तो महिलाएं पिछड़ी समुदाय में हैं। वे दलित, अल्पसंख्यक, पिछड़ी और स्त्री जाति को पिछड़ी समुदाय में रखते थे। बिहार जैसे सामंती मानसिकता वाले राज्य में तो महिलाओं को फैसला लेने की आजादी भी नहीं रहती है। ऐसे बिहार में महिलाओं के वोट टर्न आउट का बढ़ जाना बिहार की अनकही कहानी बयां करने के लिए काफी है। वोट का यह छलांग परंपरागत वर्जनाओं से मुक्ति की ओर छलांग की तरह है। श्रीकांत के अनुसार यह *सामाजिक सशक्तीकरण* की दिशा में बड़ा कदम है।

वोटर टर्न आउट बढ़ाने में लड़कियों को साइकिल और ग्रामीण क्षेत्रों में आंगनबाड़ी, सर्वशिक्षा अभियान और पढ़ाई की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। संभव है कि पिछड़े हुए समाज में जाति निरपेक्ष वोट डालने वाली महिलाओं की संख्या अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के साथ सशक्तीकरण की नई पहचान स्थापित कर दे। यह बिहार की परंपरागत छवि को नए सिरे से रचने और गढ़ने की ताकत रखता है।

सन्दर्भ सूची:

1. श्रीकांत, *राज और समाज,* वाणी प्रकाशन, न्यू दिल्ली, 2012, पृ. 23
2. उपरोक्त
3. डा. दिलीप कुमार, *सामाजिक बदलाव और बिहार,* जानकी प्रकाशन, पटना, 2015
4. *चेताशी,* वर्ष 13, अंक–1, अक्टूबर–दिसम्बर 2016, पृ.39
5. आशुतोष कुमार, ''डेवलापमेंट फोकस एण्ड इलेकट्रोरल सक्सेस ऐट द स्टेट लेवल : नीतीश कुमार ऐज बिहार्स लीर्डस'', साउथ एशिया रिर्सच, वाल्यूम 33, न.2, सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2013, पृ. 106–107.
6. अर्णव मुखर्जी एण्ड अंजन मुखर्जी, ''सुशासन : गवर्नेस एण्ड द न्यू बिहार'', इन एन.के.सिंह (एडीटेड), *द न्यू बिहार,* पेंनग्यून, न्यू दिल्ली, 2013
7. क्रिसटोफे जेफरलॉट एण्ड जी. वर्नियर, ''द रेसिसेंटस ऑफ रिजनलिज्म : बीजेपीज् लिमिटेशन्स एण्ड रिसौलियन्स ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स'', इन पॉल वालास (एडीटेड) इंडियाज 2014 इलेक्शन्स, सेज पबिलकेशन, न्यू दिल्ली, 2014, पृ. 28–45.
8. अन्ना जुहॉस, ''एनालिसिस ऑफ द लेजिसलेटिव एसेम्बली इलेक्शन्स इन बिहार 2015'', इंस्टिट्यूट फॉर फॉरेन अफेयर्स एण्ड ट्रेड, ई–2015/45, बुगपेस्ट, 2015
9. उपरोक्त.
10. कश्मीरा सिंह, ''बिहार में जंगलराज की वापसी'', चेतासी, वर्ष–13, अंक–1, अक्टूबर–दिसम्बर 2016, पृ. 16–17

Copyright @ 2020 Authors